राष्ट्रोपनिषत्

रचयिता
स्व. आचार्य डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर विद्यालङ्कारः
(महामहिम-राष्ट्रपति-सम्मानित)

हिन्दी-रूपान्तरण-कर्त्री
सौ. श्रीमती इन्दु शर्मा
एम.ए., शिक्षाचार्या

अंग्रेजी-रूपान्तरण-कर्त्ता
महामण्डलेश्वरः स्वामी श्री ज्ञानेश्वरपुरी
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थानम्, जयपुरम्

पत्रं पुष्पं फलं तोयं, महार्घं ननु वर्त्तते।
इच्छन्नपि कथं भक्तः, स्वोपास्यायेदमर्पयेत् ॥२७५॥

पत्र, पुष्प, फल और तोय आज बहुत महँगा हो गया है। चाहता हुआ भी भक्त इसे अपने उपास्य देव को कैसे अर्पित करे ?

Nowadays, leaves, flowers, fruits and water are very expensive. How will the devotee adore the chosen deity?

परस्त्रिया यथा वासः, पुरुषाय न शोभते।
तथाऽन्य-पुरुषेणापि, स्त्रियै वासो न शोभते ॥२७६॥

परायी स्त्री के साथ रहना जैसे पुरुष को शोभा नहीं देता है, वैसे ही पराये पुरुष के साथ रहना स्त्री को भी शोभा नहीं देता है।

It doesn't suit man to live with another woman. In the same way, it does not suit a woman to live with another man.

पर – स्वागत – सज्जायां, विस्मरेन्न निजान् जनान् ।
यदि ते विस्मृताः किं स्यात्, स्वागतं क्वापि सुन्दरम् ? ॥२७७॥

दूसरों के स्वागत की तैयारी में आत्मीयजनों को नहीं भूल जाना चाहिये। यदि उनको भुला दिया तो उनकी अनुपस्थिति में क्या कहीं सुन्दर स्वागत हो पायेगा ?

Relatives should not be forgotten while preparing the reception/welcoming for somebody. But if they were invited will the reception be beautiful/graceful if they don't come?

परिचिन्वन्ति ये नैव, प्राच्यां स्वां ज्ञानसम्पदाम् ।
ततस्ते वञ्चिताः किं न, विषीदन्ति सदैव हि ? ॥२७८॥

जो अपनी प्राचीन ज्ञान–सम्पदा को पहिचानते नहीं हैं, क्या वे उस ज्ञान–सम्पदा से वञ्चित हुए सदा ही दुःखी नहीं रहते हैं ?

Won't the one who does not recognise their own culture's wealth be always unhappy without it?

परेण व्यवहारः स, कार्यो यः स्वात्मनेष्यते ।
एवं कृते न कस्यापि, दुःखं जन्म ग्रहीष्यति ॥२७९॥

दूसरे के साथ वही व्यवहार करना चाहिये जो अपने साथ चाहा जाता है । ऐसा करने पर किसी के लिये भी दुःख जन्म ग्रहण नहीं करेगा ।

Others should be treated in the same way, as we want to be treated. Doing it like this, nobody will have an unhappy life.

परोपजीवि–कीटास्ते, नाध्यवस्यन्ति ये स्वयम् ।
तेऽन्येषां रक्तमाचूष्य, जीवन्ति मत्कुणा इव ॥२८०॥

दूसरों के सहारे जीवित रहने वाले वे कीटाणु हैं जो स्वयं श्रम नहीं करते हैं । वे तो दूसरों का खून चूसकर खटमलों की तरह जीवित रहते हैं ।

Those who live their lives depending on others are like workless germs. Like the bedbugs, they are sucking others blood.

पवित्रं यत्–समुद्देश्यं, यच्च सर्वहितावहम् ।
तदीयं स्थगनं कस्य, बहुखेदकरं नहि ? ॥२८१॥

जिसका उद्देश्य पवित्र हो और जो सभी का हितकारी हो, उसका स्थगित हो जाना किसके लिये बहुत खेदकारी नहीं होता है ?

Who does not feel very sorry for the postponing of something pure and beneficial to all?